chapter-8

अष्टम अध्याय

रस, अलंकार और छंद

अष्टम अध्याय

रस, अलंकार और छंद

" उत्तररामचरितकार " भवभूति ने काव्य को " अमृत रूपा " तथा " आत्मा की कला " बताया है[१]। आत्मा की कला या अमृतरूपा काव्य वही हो सकता है जो आत्मा की अभिव्यक्ति से संपन्न होता है। इस प्रकार के काव्य का अंतरंग इतना धनी, प्रबल एवं शक्ति से संपन्न होता है कि इसके लिए बहिरंग की अपेक्षा नहीं होती। ऐसे काव्य में अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती है। साहित्य शास्त्रियों ने साहित्य के क्षेत्र की इस ब्रह्म सदृश अनिर्वचनीय अनुभूति को " रस " कहकर उसे ब्रह्मानंद के सादृश्य पर " ब्रह्मानंद सहोदर " बताया है। इस ब्रह्मानंद सहोदर की अभिव्यक्ति में भाषा, रस, अलंकार और छंद तथा काव्य संबंधी अन्य विशेषतायें उसी प्रकार संलग्न हो लेती हैं यथा तेज पहाड़ी झरने के साथ पार्श्ववर्ती तत्व बह चलते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में अखा-काव्य में सन्निहित रस, अलंकार और छंद पर विचार किया गया है।

अखा काव्य में रस

~~साहित्य-शास्त्रियों ने~~ " रसात्मकं वाक्यं काव्यम् " कहकर काव्य की

---

१. वन्देमहि्वतां वाचममृतामात्मन: कलाम् ।। १-१ ।।

साहित्य शास्त्रियों ने
परिभाषा देनेवालें, जिसे "ब्रह्मानंद सहोदर कहा है उसके लिए अखा ने "ब्रह्मरस"[1], "अचयारस"[2], "अक्षयरस"[3], आदि अभिधान प्रयुक्त किये हैं। अखा का कथन है है कि "ब्रह्मरस" रूपी सरिता में कोई विरला ही झिलकोरे भर सकता है।[4] इस अगाध-अर्णव के वर्णन में अपनी अक्षमता का स्पष्ट बोध कराते हुए अखा ने अपने को चोंच में पानी भरकर बोलने की चेष्टा करनेवाली चिड़िया बताया है[5]।

---

१. ब्रह्म रस तब ठहरे, अखा होय सोना हेम तल शुद्ध ।।

२. अवाच्य रस मुख बिन पीना ।

पद - १०३, अ० रस० पृ०

३. अखे रसनी चाले छे नदी

अखा-काव्य में अभिव्यक्त "अक्षयरस" का विवेचन करते हुए आचार्य उमाशंकर जोशीने अपने "अखो- एक अध्ययन" नामक ग्रंथ में "अक्षयरस" के नामसे एक स्वतंत्र अध्याय की योजना की है। कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह जी ने अखा-काव्य में "अक्षयरस" की अवस्थिति देख कर कवि की हिन्दी रचनाओं के संपादन ग्रंथ को ही "अक्षयरस" के नाम से अभिहित किया है।

४. अ. देह के काल धर्म जल तीरे डुब रहा जुग सारा ।

ब्रह्म दरिया में विरला झीले, कोइ अखा रे सोनारा । पद-३

— अक्षयरस पृ० ६४

आ. आत्म सिन्धुमां हे अखा ! करो झाकम झोल । पद ३८ अ०वा०

५. हे चिद् अर्णव अगाध हुं चीड़ी चंच भरी के कहुं ।

— सं०प्रि० ३, पृ० १३६

२

रसः की संख्या, उनके भेद एवं पारस्परिक संबंध आदि विवादास्पद प्रश्नों के पिष्ट-पेषण में न पड़कर शांत, मधुर, अद्भुत, विप्रलंब शृंगार, वीर, वात्सल्य आदि रसों को स्वीकार किया गया है। अखा की हिन्दी रचनाओं में प्रबंधात्मक कृतिओं की कमी होने के कारण इन रसों की निष्पत्ति के उदाहरण उनकी मुक्तक रचनाओं से दिये गये हैं।

१. शांतरस

कवि की शांतरसाविष्ट कृतियों में ब्रह्मलीला, एकलक्ष रमणी, कुंडलिया, कतिपय पद तथा साखियों के कुछ अंगों की गणना की जा सकती है। निम्नलिखित पद में शांतरस की योजना देखिए :-

घर न चले घरवासा भागा, अनभे खोज लीनी निज आगा।टेक।
मेरी लड़की कोई न मेरा, मोंसे सब करे घर घेरा ।।१।।
पांच पतू ठगारे घरमें, मेरी माया लगाये भरमें ।।२।।
गुरु ज्ञानी मोहे मरम बताया, तब मैं सब का हिरदा पाया ।।३।।
गुरु के हिरदे का बिचारा, सारा कुटुंब त्रिगुनी बिस्तारा ।।४।।
ऐसा जान सब थाय थपेड्या, द्वैत लक्ष भागा घट घेरा ।।५।।
असल एन असमानी आपा, जाका मोल तोल नहीं मापा ।।६।।
नाहीं भीतर नाहीं बहारा, ज्यूं का त्यूं ही अखा है सारा[१] ।।७।।

---

१. अक्षयरस, पद -१८, पृ० १००

स्थायीभाव – शम : घर नहीं चलना, घरवासा भग्न होना,

पांचों पूतों के ठगारे निकलना आदि के कारण संसार के प्रति अनासिक्त और तज्जनित वैराग्य– शम ।

आश्रय : कवि स्वयं ।

आलंबन विभाव : परमार्थ सेवन- नि:श्रेयस प्राप्ति अथवा आत्मज्ञानोपलब्धि ।

उद्दीपन विभाव : ज्ञानी गुरु द्वारा मार्गोपदेश

" गुरु ज्ञानी मोहे मरम बताया ।"

अनुभाव विभाव : आश्रय की हताशा, मोक्ष की चिंता

" सारा कुटुंब त्रिगुनी बिस्तारा " ।

संचारी भाव : धृति- नाहीं भीतर नाहीं बहारा

विबोध -- " ज्युंका त्युं ही अखा है सारा " ।

दैन्य- ऐसा जान सब थाय थपेड्या

निष्पत्ति : आत्मज्ञानोपलब्धिजनित चित्त की शांतावस्था ।

श्रृंगार [मधुर] रस

कवि ने भक्ति-रसामृत के लिए " रामरसायण "[1], " सुधारस "[2] आदि

---

१. रामरसायण जब जिनहीं पियो है, ताके नैन भयो कुछ औरा ।
– पद ५, अ०रस, पृ० ६५

२. आवणा जावणा लोकवदिता, समज सोनारा " सुधारस " पीता ।।
– जकडी ३५ अ०रस, पृ०

अभिधान प्रयुक्त किये हैं। कवि की जिन रचनाओं में " दाम्पत्य प्रतीकों " के सहारे " परब्रह्म " के प्रति अपनी अलौकिक रति " व्यक्त की गई है उन्हें शृंगार से भिन्न सूचित करनेके उद्देश्य से " मधुर[१] रस " की रचनायें कहा गया है। इसके संयोग एवं वियोग- दोनों पक्षों के उदाहरण मिलते हैं। ऐसी रचनाओं में जकड़ी, फूलना तथा फाग के पद तथा साखियों का " बिरह अंग " विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निम्नलिखित जकड़ी में प्रिया-प्रियतम के संयोग के आनंद वर्णन का आस्वाद किया जा सकता है -

मेरा ढोलन ढलकर आया रे
हूं दधू घोवूंगी पाया रे। मेरा ढोलन ।।१।।
हूं आप सरीखी कीती रे।
दोउ जगमें हूं जीती रे।
हूं एक मेक कर लीती रे। मेरा ढोलन ।।२।।
सब सहीऊ में मैं रानी रे।
जब लालन की ठकरानी रे।
तें राख्या मुहुं का पानी रे। मेरा ढोलन ।।३।।
जैसा था मेरा छावा रे।
शाही रंग में मिल जावा रे।
तुज मिलने गये दावा रे। मेरा ढोलन ।।४।।
घूघरी मोतन की खाई रे
जब सोई मिल्या मुज धाई रे।
तब उमग्या अखा जग मांही रे। मेरा ढोलन[२] ।।५।।

---

१. दृष्टव्य : संत काव्य : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ०
२. अक्षयरस: जकड़ी १०, पृ०२१

स्थायी भाव :: रति-प्रेम

आश्रय :: नायिका [आत्मा]

आलम्बन विभाव :: ढोलन [परब्रह्म– परमात्मा]

उद्दीपन विभाव : ते राख्या मुंहु का पानी, तुज मिलने गया दावा रे.. ।

अनुभाव : आश्रम का अनुरागपूर्ण आलाप –

हूं आप सरीखी कीती रे, दोऊ जग में हुं जीती रे ।

हूं एकमेक कर लीती रे ।

संचारी भाव :: हर्ष :: घुघरी मोतन कीखाई रे ।

उन्माद : जब सोई मिल्या मुज धाई रे

तब उमग्या अखा जग मांही रे ।

निष्पत्ति : " शाही रंग " में मिल जाना एक रूप हो जाना ।

अखा में भयंकर, हास्य, करूण, रौद्र आदि अन्य रसों के पूरे उदाहरण नहीं मिलते हैं । निम्नलिखित उदाहरण में विप्रलंभ श्रृंगार, अद्भुत, वात्सल्य एवं वीर रस भावना की व्यंजना स्पष्ट है ।

विप्रलंभ श्रृंगार

अखा में प्राप्त " विरह " अध्यात्म विरह है । आत्मा-प्रिया अपने परमात्मा प्रियतम की प्राप्ति में रोती कलपती है । निम्नलिखित उदाहरणों में इष्टजन विप्रयोग के कारण अद्भुत स्थायी भाव शोक का नायिका के अश्रु-

पातन, विलापादि, अनुभावों तथा चिंता, स्मरण आदि संचारियों के द्वारा परिपुष्ट होता हुआ देखा जा सकता है।

बिरहा खूनी है खरा निसदिन मारे मुंज
के मिलके तुं मार ले मेहेर न आये तुज । १६ । विरह अंग ।
बिरहा बाज जीव तीतरा तोरि तोरि मुज खाय ।
ना तुं मिले यो तन# से रोवत निसदिन जाय ।।१७।।
रोते देखिये नेनेकु, पण रोम रोवे मोय ।
भाता देखीये गान सा निसदिन मो मन रोय ।।१८।।

अद्भुत रस :

निम्नलिखित उदाहरणों में अलौकिक आलंबन के गोचरीकरण से उत्पन्न विस्मय भाव के कारण उसके वर्णन में कवि की वागीन्द्रिय की निश्चेष्टता देखी जा सकती है।

नावे गुणे निरगुण की बातें, आप बन्यों हे अपनी इच्छा तें
आपे आप आनन्द केवल रस, नावे गुणे निरगुण की बातें ।१।
ज्ञान कथी कथी हारे ज्ञानी भक्त भजी भजी हारे गाते ।।
त्याग वैराग्य करी करी थाके, प्रगट खेल न आवत वाते ।२।
एही अचरज बुझे कोई ज्ञानी, क्या जाने को भेद की जाते
जैसी वज्र कों वेधे वज्रमणि और न कहे कोई बात बनाते ।३।
क्यारे कहुं बनत नाहीं कहते, अकथ कहानी लखी न जाय पाते ।
प्रगट प्रमाण हजुर हथोहथ, ओही बिराजे नाहीं अखा ते ।४।

वात्सल्य:

निम्नलिखित उदाहरणों में " वात्सल्य " के भाव की व्यंजना देखी जा सकती है । अखा काव्य की वह विशेषता है कि उनमें माता के पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव का कथन न होकर पिता के पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव का कथन है

मोरामक्त ऐसा अखा जैसा कालापतू
वचन बोलत तोतरे तब प्यारा अद्भुत ।३। मो० म० अंग
पिता लगावत कंठ तब मुख चुंबत तोतराई
चाटु वचन बोलत भया तब तें अंग न लाई ।४। मो०म०अंग
पिता पतू सो दो नहीं, पतू पिता का तन ।
एक तन का दो तन भया, तेसे हरि हरिजन । संशय अंग

वीर

अखा काव्य में प्राप्त वीर रस के भाव की उक्तियों को युद्धवीर के अंतर्गत रखी जा सकती हैं । इन उक्तियों में युद्ध क्षेत्र में मर्द पुरूष या शुरवीर के उत्साह का निरूपण हुआ देखा जा सकता है ।

मरदु के मेदान में जब निशान मडंत ।
सुर मकलावत मरनकु हीजु त्रास पडंत ।१।
हड़ बड़ लागी हीजकु सो फीर फीर ताके ओटे
सुरा साहवे सिसकु लेवे मुख पर चोट ।२।
मरद लडे सो मरद सु हीजकु मारे नाहि ।
सुरा सो सनमुख लड़े हीज सो मुख फीराही ।।३।।

अखा कृत अलंकार विधान

कवि की रचना में काव्यात्मकता के उत्कर्षक रूप में अलंकारों का महत्व देश विदेशों के साहित्य में प्रसिद्ध है । वास्तव में अलंकारों के द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौंदर्य का संपादन होता है । किंतु संतों का काव्य सहज एवं अंत:प्रेरित होने के कारण उसमें अलंकारगत वह सौंदर्य नहीं होता है जो अन्य साहित्यकारों द्वारा रचित " विशुद्ध साहित्य " में होता है । इसके अतिरिक्त कई संतों ने तो विभिन्न रस, अलंकार, छंदगत चमत्कृति युक्त बानी को अध्यात्म मार्ग में त्याज्य भी बताया है । अखा संत थे, अत: उन्होंने भी विभिन्न भाव, रस, अलंकार छंदादि से " शोभित वाणी को भुलावे में डालनेवाली " " पुष्पित वाणी, कहकर[१] अपने को ज्ञानी बताकर[२] अलग कर लिया है, किंतु अखा का काव्य सहज काव्य अथवा अंत:प्रेरित काव्य है[३]। और अंत:प्रेरित काव्य में आयासजन्य अलंकरण नहीं होता । अखा काव्य में अलंकारों का जो संन्निवेश हुआ देखा जाता है वह

---

१. शणगारी वाणी सौं गाय, मोह्या जीव सांमलवा जाय ।

आ. पुष्पित वाणी ते मेवास, सुख सरसु महाआयास । - अखेगीता, कडवक १

२. ज्ञानी ने कविता न गणेश, किरण सूर्यनां केम वर्णेस ।

३. प्राणपति संग है सदा, सब चेतनता ताहि

ताका प्रेर्या मन अखा । कल्प कल्पी सब गाइ ।५।

-संशय परिहार

स्वत: स्फुट होने के कारण काव्य को शोभित करते हैं।

अखा द्वारा प्रयुक्त अलंकारों में कवि का कल्पना वैभव दृष्टव्य है। विरह, सद्गुरु, परब्रह्म, हरिजन विषयक रूपकों एवं उपमाओं में कवि के 'कल्पनाविधान का विशेष प्रसार देखा जा सकता है। कल्पना के धनी इस संत के सक्रिय मन से कई अनूठी कल्पनाएँ उद्भूत हुई हैं। जैसा कि डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित का कथन है - 'संतों के कल्पनाविधान में व्यावहारिकता एवं कलात्मकता का सुन्दर समन्वय है' - यह समन्वय संत अखा के अलंकार-विधान में भी देखा जा सकता है। दैनिक जीवन व्यवहार में से अपने उपमानों को जुटाने में संत अखा को जो सफलता मिली है वह 'पद्मावत' के रचयिता महाकवि जायसी की एतद्विषयक सफलता का स्मरण दिलाती है[१]।

समर्थ कल्पना बल से उद्भूत लोकप्रिय एवं सुन्दर उद्भावनाओं के कारण अखा का काव्य स्वाभाविक, प्रेषणीय एवं प्रभावोत्पादक है। इतना ही नहीं वैविध्यपूर्ण एवं औचित्यपूर्ण अप्रस्तुत विधान जुटाने में कवि के लिए अपेक्षित विवेकबल के साथ सूक्ष्म अवलोकन, सहृदयता एवं ग्राहिका तथा कारयित्री प्रतिभा -सभी कुछ अखा में यथोचित मात्रा में सन्निहित है। विभिन्न अलंकारों, मुहावरों एवं कहावतों के अध्ययन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गुजरात की ज्ञानमार्गी परंपरा का अन्य कोई कवि इस क्षेत्र में अखा का सानी नहीं

---

१. दृष्टव्य : पद्मावत का काव्य सौन्दर्य : डॉ० शिवसहाय पाठक - 'जायसी का उपमानविधान'।

अखा काव्य में उपलब्ध शब्दालंकारों में अनुप्रास [वृत्य एवं छेक] पुनरुक्ति प्रकाश, यमक और श्लेष प्रमुख है जब कि अर्थालंकारों में अलंकारों के सादृश्यमूलक विभाग में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टांत और उदाहरण तथा विरोधमूलक विभाग में विरोधाभास एवं विभापना प्रमुख है। प्रस्तुत कथन को निम्नांकित चित्र द्वारा और स्पष्ट किया जा सकता है।

अखा-काव्य अलंकार विधान

- शब्दालंकार
  - अनुप्रास, पुनरूक्ति प्रकाश, यमक
- अर्थालंकार
  - सादृश्यमूलक
    - उपमा, रूपक, दृष्टांत, उदाहरण, उत्प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास,
  - विरोधमूलक
    - विरोधाभास
    - विभावना

अ. <u>शब्दालंकार</u>

१. अनुप्रास[१]: जहाँ वर्णों की समता होती है वहाँ अनुप्रास होता है। अखा द्वारा प्रयुक्त प्रस्तुत अलंकार में छेकानुप्रास एवं वृत्यानुप्रास की प्रधानता है।

---

१. संत साहित्य, डॉ० प्रेमनारायण टंडन - पृ०३२५

[क] छेकानुप्रास[1]

जहाँ किसी वर्ण की एक बार आवृति हो, वहां छेकानुप्रास होगा ।

१. जिज्ञासु शिष्य सदगुरु, जब मिलीया प्रसंग
ज्यूं दीपुं दीपक परगटे, जब परसे अखा १ अंग ।। १४ ।।

२. पढ़े पढावे वेद व्याकरना, धर्म कर्म अधिकारी
तामें उरफ रहे उर अंतर, ना कोई तोल हमारी ।। पद-२

३. नादी वादी गुणी गवैया, कवि कला रस कहेता
वंचक पूजक सेवक स्वामी, कोई नहीं ब्रह्मवेत्ता ।। पद-३

[ख] वृत्यानुप्रास[2]

जहाँ पर एक वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होती है, वहाँ वृत्यानुप्रास होगा ।

१. चिद् चराचर चिह्नि बिन चितवत चित के चेहन
पूरंन लहा बिन पामरा आयु कहावत रेन ।।४६।। सं०प्रि०

२. लंपट लोभी लालची, निर्लज और लबाड
अखा आरत नहीं आतमा, जैसी छाया ताड ।। १।। लंपट

३. पांचि पचीस पचास पचान् किधौं कोटि कलप जीउ कबे कोउ
किधू जात मर्यो किधू गर्भ गिर्यो समान सबे सत्य जाने जेसेउ । सं०प्रि०

---

१. संत साहित्य, डॉ. प्रेमनारायण टंडन पृ०३२५
२. संत साहित्य : डॉ० प्रेमनारायण टंडन, पृ०३३५

२. पुनरूक्ति प्रकाश[1]

जहाँ चमत्कार अथवा रमणीयता की दृष्टि से शब्द की आवृत्ति होती है वहाँ पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार होता है।

१. जाई जाई कहाँ जाएगा, आगे आगे आकाश
गाई गाई कहा जाएगा, सब ही शब्द विलास ।।२।।

२. मिथ्या सत्य सत्य होत है कथत कथत कर्मकाय
ज्यू घूणात घूणात भ्रम भया, अखा असंगता जाय ।।१६।।

३. खोजत खोजत रूप गया खं मध्य खोजनहार
तब अखो केहे स्वे रहा, जाको वार न पार ।७। समस्या अंग

३. यमक[2]

जहाँ सार्थक शब्द या वाक्यांश एक से अधिक बार आते हैं, लेकिन अर्थ सर्वत्र भिन्न होते हैं, वहाँ यमक अलंकार होता है।

१. जलने को जुवती चली साज सती का साज
तब असन वसन को उर धरे, तो अखा होय अकाज ।।६।।

२. रामभक्त साचा अखा ना दाना नादान
गुडीजा खेले गगन में अरु अखा वायुका तान ।।

३. आप मीहा और आप रहे, आप बढया वा घूलधाणी ।।५६।।
-झूलना

---

१. हिन्दी साहित्यकोश, पृ०४५४
२. वही० ६०७

आ. सादृश्यमूलक अर्थालंकार

उपमा – जहां उपमान-उपमेय में जहाँ चमत्कृत सौन्दर्यमूलक सादृश्य होता है वहाँ उपमा अलंकार होता है।[१] आचार्य उमाशंकर जोशी ने " उपमा कवि " के अभिधान से अखा का समुचित मूल्यांकन किया है। अखा की टकसाल से कई अनूठी उपमायें निकलती गई है –

१. नाना वाणी मत सूणे, शबुद जाल बहु भात
   भाग भाग बिखरे अखा, जैसे रुई तांत ।।

२. अखा गेबी रामकुं घुंघट बहु सोहाय
   ज्युं बादल ओढ़ दामिनी, दूर दूर रूप देखाई ।६।।

३. हरिजन का तामस अखा ! जैसी चंद की धाम
   तेज करे तपे नहीं, और उपदेशे आराम ।।२।। खल अंग

४. अंबुज-सी अंगना अति आछी मन मधुप पावे न विरामा।।१५।। सं०प्रि०

५. खंजन-सी मति छाडि सद्गुरु अंजन दे नेन गहन गमावे ।।१०।।

रूपक

उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार माना जाता है[२]।

अखा द्वारा रचित रूपकों में प्रायः ।१। सांग और ।२। निरंग के

---

१. हिन्दी साहित्य कोश पृ० १५४

२. वही० ६६८

उदाहरण उपलब्ध है ।

सांग :- उपमान के सभी सहचर अंगों का उपमेय के अंगों पर आरोप होता है तब सांग रूपक होता है[१]।

१. ज्ञान घटा चढ़ आई अचानक, ज्ञान घटा चढ़ आई ।
अनुभव जल बरखा बड़ी बुंदन कर्म की कीच रेलाई ।
दादुर मोर शब्द संतन के, ताकी शून्य मीठाई ।
चहुंदिश चित्त चमकत आपन पों, दामिनी सी दमकाई ।
घोर घोर गरजत घन घेहेरा, सतगुरु सेन बताई ।
— पद १३

२. अखा सागर ब्रह्म का, मथे संत के साथ
शब्द रतन ताहां प्रगटे सो आवे पारिख के हाथ ।।१०।। उपदेश

३. ममता तेली मन वृषभ माया घाणी फेर
अखा पिलाये कामना और होता जाय उमेरा ।।१।। माया अंग ।

निरंग :- निरंग रूपक में उपमेय पर केवल उपमान का आरोप होता है, अंगों का नहीं[२]।

बिरहा बाज जीव तेतरा, तोड तोड मुज खाय
ना तूं मिले वो तन कसे, रोवत निशदिन जाय ।१७। विरह अंग

---

१. हिन्दी साहित्यकोश पृ० ६६६
२. हिन्दी साहित्यकोश पृ० ६६६

बिरहा खूनी है खरा, निशदिन मारे मुज
के मिल के तूं मार ले, मेहर न आवे तूज ।।१६।।
ज्यूं करे त्युं तूहि करे कलम तो ज्युं हरफ लिखे
तब हाथ चले हरस खरा मेरा चारा नाहीं जरा
मैं कलम तूं हाथ प्यारे मैं कहू सो तेंज कीआ
अव्वल आखर तूं ज अखा बिच में मेरे सिर दीआ ।८४। फूलना

उदाहरण :-- कोई साधारण बात कहकर ज्यों, जैसे, ज्युं इत्यादिवाचक ~~वाचक~~ शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से जहाँ समता दिखाई जाती है वहाँ उदाहरण अलंकार होता है[1]।

१. तज्ञों का तन भिन्न न हरि सुं ज्युं तंतु कायर किन्हा
ज्यूं कपडा तें सुत ज्युं कात्युं [एम] आपा चिह्निया । भजन-२ ।।

२. आत्म अनुभव बिन अखा, ज्ञान कथन बक्वाद
जैसा राजा चित्र का न दे कोई को दाद ।।२६।। आत्मअंग

३. ज्ञान कथे चित्त ना घटे, तो तत्व न लागे भोग ।
मरकट गुंजा ताप ज्युं, सीत न मेटे रोग ।१। नेष्टज्ञानी अंग-साखी

४. ज्युं रतन मिले रतनाकरे त्युं राम मिले गुरु पास ।
ताते सेवो सदगुरु, जै द्वैत दरिद्र करे नास ।२। सदगुरु -साखी

दृष्टांत [2]

जहाँ पर उपमेय, उपमान और साधारण धर्मका बिम्ब प्रतिबिंब भाव

---

१. हिन्दी साहित्यकोश पृ० १३७

२. हिन्दी साहित्यकोश पृ० ३३६

से कथन हो वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है ।

१. ना होवे नर का किया, सब नारायण का जाण ।
शुक सारक पठते सुने, कब बगकुं उपजी वाण ।३। दुनिया अंग

२. जल सागर के आगळा मालम जाका नाम ।
हरिसागर आगू अखा ज्ञानी नर अकाम ।।४।। असंत अंग

३. अपढ़ पढ़ा सब सारखा, जो नांही आतम लक्ष ।
सावी के चितरी शिला, अखा ! सरखी डूबन पक्ष ।१६। पारस

४. आत्म अनुभव बिन अखा, धीरज न्होय निभाव ।
जद्यपि बुढा बंदरा, टले न चपल स्वभाव ।।३३ । आत्मा

तुल्ययोगिता[१] ।

जहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत वस्तुओं में एक ही गुण धर्म का साधर्म्य बताया जाय वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है ।

१. सूरज का और संत का प्राय: एक स्वभाव
चर्मचक्षु खोलत दिनकरा, ज्ञानचक्षु संत फेलाव ।६। गुरुअंग

२. जाकु संग जैसा मिले, तहाँ तैसी नीपज होय
ज्यां शीत संग नीर पथर भया सो तेज संग होय तोय ।।६।। विभ्रम

३. ज्युं नीर विषे नौका रहे, तो वहे कोटिमण भार
त्युं नारायण में नर रहे, तो सहित तरे संसार ।।५।। सहेज

---

१. हिन्दी साहित्यकोश पृ० ३२६

उत्प्रेक्षा अलंकार : जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना की गई होती है वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है,[1] जैसे -

१. केहे अखो बिन आप पहेचान्य, मानु सुपने की लक्ष्मी सत्य मानी ।।१०७।।
-सं०पि०

२. चलत एसे ही खेल मानु नीर डार्यो तेल ।
टेढी -सीधी गोल बेल, सेहेज में वीगत्य की ।११४। सं०पि०

अर्थान्तरन्यास : जहाँ सामान्य का विशेष द्वारा और विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है,[2] जैसे -

१. एक गुरु के सीख अखा नुगरा सुगरा दोय ।
ज्युं चार पयोधर हे अजा दो दूध ~~स्वम्म~~खाली होय ।।४।। नु०सु०पहिचान ।

२. दोनुं कथनी एक है, फेर बहोत लक्षमांहि ।
हंस बग जल कंठ के मोती मछली खाहे ।।५।। नुं०सु० पहिचान ।

इ. विरोधमूलक अर्थालंकार

विरोधाभास[3] : जहाँ यथार्थतः विरोध न होकर विरोध के आभास का वर्णन होता है वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है ।

१. जड़ काटे फल उमटे, सो बुध जाणे गुरु बाल
जड़ सिंचे फल परगटे, ताको खावे काल । १२।। मरोसा

---

१. हिन्दी साहित्यकोश पृ०१३३

२. वही० पृ०५६

३. वही० पृ० ७१६

२. शब्दातीत निगम मुख गावे, जाकों योगेश्वर ध्यान लगावे

जाकुं रटत हैं महामुनिश्वर, सो ज्ञानी घर बैठ हीं पावे ।।५६-६

विभावना : जहाँ पर कारण का अभाव होते हुए भी कार्य के होने का वर्णन किया जाय वहाँ विभावना अलंकार होता है[१]।

१. ऐसी साध आद बिन अंबर, लिंग बिना रहे सब रस मासी ।। पद-३

२. बिन मूवे मूवा नर सोही जिनुं ऐसी उपज होई । पद १५

३. जाकु नेन नहीं सब नेन देखे, बेन नहीं सब बोल सो बोले

कान नहीं सब कान ईया के नासा नहीं सब बास सो ओ ले ।७८।। सं०प्रि०

---

१. हिन्दी साहित्यकोश, पृ०७१८

छंदोविधान

१. देवनां# देवी आराध्य पिंगल न व्याकर्ण साध्य ।। सं०प्रि० १११

२. ग्रंथ पहेलां एम जाणवुं अमो मगण जगण नथी । अखेगीता, कडवक १

३. पढते पढ़ते पचीमुआ, व्याकरण पिंगल सार
आपा अधिक बढे अखा ज्यम ताजाह संसार ।।१४।। सर्वांगी साखी

उपर्युक्त पंक्तियों से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है ।

१. अखा के समय भाषा एवं साहित्य की रचना में व्याकरण एवं पिंगल के शास्त्रज्ञान का होना आवश्यक समझा जाता था ।

२. अखा ने स्वयं को इस शास्त्र के ज्ञान-रहित बताया है ।

३. अध्यात्म मार्ग में इस शास्त्र के अध्ययन को अनावश्यक बताया है।।चूँकि अखा संत होने के नाते उनकी कृतिओं में छंद शास्त्र की दृष्टि से निहायत शुद्ध उदाहरण की अपेक्षा रखना अवास्तविक होगा । तथापि उनकी रचनाओं में प्रचलित छंदों का सुष्ठु प्रयोग हुआ देखा जा सकता है । जैसा कि आचार्य बिपिनबिहारी त्रिवेदी जी ने " पृथ्वीराज रासो " के छंदों का विवेचन करते हुए सर्वथा उपर्युक्त ही कहा है : " कवि के लिए छन्द का मुखापेक्षी होना अनिवार्य नहीं तथा यति-गति के नियंत्रण उसे विवश नहीं करते परंतु यह किससे छीपा है कि वर्ण और मात्रा योजना की लयकी मधुरिमा उसके भावों की व्यंजना की सिद्धि में अदृश्य प्रेरक शक्ति है और ऐसी शक्ति का संबल कौन छोड़ना चाहेगा[१] ?" संत अखा ने भी इस शक्ति के संबल को छोड़ा नहीं है और यही कारण है कि उनके काव्य में

---

१. रेवातट [पृथ्वीराज रासो] : संपा० बिपिनबिहारी त्रिवेदी, एम०ए०, डी०फील [कलकत्ता] सन् १९६१ पृ०४१

छंद वैविध्य भी दृष्टिगोचर होता है। उनके द्वारा प्रयुक्त छंदों को दो भागों में निर्दिष्ट किया जा सकता है - [१] शास्त्रीय और [२] सधुक्कड़ी[२]। शास्त्रीय

---

१. शास्त्रीय छंदों से मतलब यह नहीं है कि अखा ने छंदों को पिंगलशास्त्र के नियमानुसार शुद्ध रूप में ही प्रयुक्त किया है। शास्त्रानुमोदित छंदों के प्रयोग में भी वर्ण और मात्रा संबंधी नियम-हीनता दृष्टिगोचर होती है और ऐसे स्थान पर आवश्यकतानुसार कभी कभी "गुरु" का "लघु" और "लघु" का "गुरु" बताया गया है। इस प्रकार थोड़ी उदारता के साथ इस छंदों को शास्त्रीय कसौटी पर कसा जा सकता है।

"हिन्दी की निर्गुणकाव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि" में डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने संतों द्वारा प्रयुक्त "साखी, शब्द और रमैणी" को "सधुक्कड़ी छंद" कहा है। ये छंद मूलत: शास्त्रसम्मत है किंतु अनपढ़ ऐसे साधु- संतों के हाथों श्रुति परंपरा के रूपमें दीर्घकाल से व्यवहृत होने के कारण शास्त्रीय नियमों की पाबंदियों से सर्वथा मुक्त हो गये। अन्यथा "साखी" और "रमैणी" का निर्माण दोहा-चौपाई की भित्ति पर किया जाता है और "पद" का ध्रुव, अंतरा और आभोग के आधार पर होता है।

छंदों में अखा ने मात्रिक और वर्णवृत दोनों लिखे हैं। मात्रिक सम में 'फूलना' 'चौपाई', अर्ध सम में 'दोहा', 'सोरठा' और विषम में 'कुंडलिया', 'छप्पय' प्रयुक्त हुए हैं। वर्णवृत्तों में से मनहरण कवित्त का व्यवहार हुआ है। अखा द्वारा प्रयुक्त सधुक्कड़ी छंदों में 'साखी', 'शबद' और 'रमेणी' का उल्लेख किया जा सकता है। सभी छंदों को निम्नांकित चित्र में प्रस्तुत किया जा सकता है।

अखा काव्य में प्रयुक्त छंद

शास्त्रीय
- सम: फूलना, चौपाई
- अर्धसम: दोहा-सोरठा
- विषम: कुंडलिया, छप्पय

सधुक्कड़ी
- साखी, शबद, रमेणी

<u>अखा द्वारा प्रयुक्त शास्त्रीय छंद</u>

उपर्युक्त छंदों में से चौपाई, छप्पय और सोरठा विशेषकर कवि की गुजराती रचनाओं में व्यवहृत हुए हैं। 'पंचीकरण' और 'चित्तविचार संवाद' में आद्यंत चौपाई छंद का निर्वाह किया गया है। इसी चौपाई छंद के छ पदों की नियोजना द्वारा कवि ने षट्पदी - 'छप्पा' की रचना की है। यह 'छप्पा' और 'अनुभव बिन्दु' के छप्पा में अंतर है। अनुभव बिन्दु के 'छप्पा' पिंगल शास्त्र के 'छप्पय' हैं क्योंकि उनमें प्रथम चार पंक्तियाँ 'रोला' की और अंतिम दो 'उल्लाला' की है। 'गुरु शिष्यसंवाद' में चौपाई और

दोहा दोनों का व्यवहार हुआ है । शेष लघु छंदों में सोरठा और दूहा का प्रयोग मिलता है । " सोरठा " गुजराती रचनाओं में है जबकि दूहा-दोहा विशेषकर हिन्दी रचनाओं में व्यवहृत हैं ।

अपने समय तक की छंद परंपरा का स्वीकार कर कवि ने प्राय: मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है फिर भी " मनहरणकवित्त " आदि वर्णवृत भी व्यवहृत हुए हैं । यहाँ क्रमश: उन पर विचार किया जाएगा ।

मनहरणकवित्त

संतप्रिया में कवि ने जिसे " कवित " कहा है पर वर्णिक छंदों के समवृत का एक भेद " मनहरणकवित्त " है । आठवें वर्ण पर यति, १६ और १५ की दो पंक्तियाँ और अंत में गुरु [S] होता है।[१]

ज्ञान को अलख लख, नाहे स्वामी नाहे शिष्य   १६
जैसे ही न चाहे पख, सिंघ बन केसरी ।   १५
सुरसतसीघ ओज, तावे धीर नाही कोज   १६
ना पीरे ताही मनोज, मृग को नरेश्वरी ।।   १५
देव ना देवी आराध, पिंगल [न] व्याकर्ण साध्य १६
अगम गावे अगाध [जांहां] माया नांहि ईश्वरी   १५
नाही को रीझबे काज्य, जैसे वृषाघन गाज   १६
जाने कोई ज्ञानराज, अखा की कवेश्वरी ।।   १५

---

१. हिन्दी साहित्यकोश पृ० ५६५

मत्तगयंद

संतप्रिया में कहीं-कहीं सात भगण [अखो एक अध्ययन " में छापे की गलती के कारण इसका " सगण " हो गया है] और अंत में दो गुरुवाला " मत्तगयंद " भी व्यवहृत हुआ है। इसे आचार्य रा०वि०पाठक कृत 'बृहत् पिंगल' में " इंद्रविजय कहा गया है[१]।

गालल गालल गालल गालल

गालल गागल गालल गालल ।

प्रत्यक्ष । के पर । मान वि ।। ना नर । धावत। छूपत । तोरत । पाती ।।७।।

बत्रीसो सवैया

उपर्युक्त छंद में गुरु का लघु करने पर बत्तीस मात्रा [७×४+२+२]वाला सवैया भी हो जाता है[२]।

सो हरि। हाजह ।जूरह । थो ह्य। स्वें नर । पाव जो। आवु वि ।चारा

दोहा

प्रस्तुत छंद संतप्रिया में प्रयुक्त हुआ हैं ।

दोहा के विषम [१-३] चरणों में तेरह और सम ।२-४। चरणों में ग्यारह मात्रा यें होती है । यति पादांत में होती है । विषम चरणों के आदि में जगण नहीं होना चाहिए । मात्रिक गणों का क्रम इस प्रकार रहता है

---

१. अ. बृहत् पिंगल : रामनारायण विश्वनाथ पाठक, पृ० १६५

आ. अखो एक अध्ययन, पृ० १६६

२. अखो एक अध्ययन, पृ० १६६

६ + ४ + ३, ६ + ४ + १ । सम के अंत में लघु[1] ।

पूरनता जानत नहीं लेत गुननकी ओट

सो भव में भटके अखा सीसे तिमिर को मोट ।।४७।।

चौतीसो सवैया

ब्रह्मलीला में कवि ने जिसे " चोखारा " कहा है उसे आचार्य उमाशंकर जोशी " चौंतीस मात्रावाला सवैया " कहते हैं जिसमें " सत्तह मात्रा पर यति " और अंथ में " गा गा " होता है[2] ।

एसो रमन चल्यो नित्य रासा प्रकृति पुरुष को विविध विलासा ।

जैसे भीत रची चित्रशाला, नाना रुप लखे ज्यों विशाला ।।

आचार्य के० का० शास्त्री ने चोखारा को " हरिगीत की देशी " बता है[3] । प्रस्तुत छंद रचना में कवि की कलाचातुरी भी देखी जा सकती है । पंक्तियं के चरणों में आंतरप्रास मिलाकर कवि ने समूचे प्रबंध में " संगीतात्मकता " का सन्निवेश किया है ।

गीतिका :- " ब्रह्मलीला " में कवि ने जिसे " छंद " कहा है उसे हिन्दी का छब्बीस मात्रावाला " गीतिका कहा जा सकता है । किंतु गीतिका छंद का शुद्ध उदाहरण बनाने के लिए अखा की रचनाओं में कहीं-कहीं गुरु का लघु करना पडता है ।

---

१. हिन्दी साहित्यकोश, पृ० ३४२

२. अखो एक अध्ययन पृ०२००

३. साहित्यकार अखो : पृ०१६

गीतिका में चौदह, बारह पर यति और अंत में लघु गुरु होता है[१]।

१. अगुण ब्रह्म सो स्तुति पदारथ दृष्ट पदारथ स्वामिनी,

अखा ब्रह्म चैतन्य घन में भइ अचानक दामिनी ।

२. उर अंतर में आप स्व बस्तु ढिग नहीं माया तबे

अन्य नहीं उच्चार करिवे स्व स्वरूप होहीं जबे ।।

कुंडलिया

अखा के कुंडलिया छंद शास्त्र में निरूपित लक्षणों के आधार पर भी खरे उतरते हैं। कुंडलियों में प्रारंभ की दो पंक्तियाँ दोहा की और शेष चार रोला की होती है। मात्रा की दृष्टि से इन छहों पंक्तियों में प्राय चौबीस चौबीस मात्रायें यथास्थान यति सहित मिलती हैं -

करनो शुद्ध विचार पार नर तत्क्षण पावे

पार पावन की विद्या शुद्ध येहि अनुभव किजे ।

जे तो देहि विकार भार सब देह शिर दिजे

मैं तो अव्यय अनुपम सदा, अलेपक साक्षी

पांच पचीस सेना ये चालत मुज आखी ।

प्रकृति पुरूष विवेक, छेकलूं नीके आवे

अखा ये परनालिका, पार नर तत्क्षण पावे ।।

झूलना:- हिन्दी साहित्यकोश में " झूलना " को [१] बच्चों को झूला-झूलाने का एक गीत, [२] प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और ५ के विराम से

---

१. हिन्दी साहित्यकोश पृ० २६०

६ मात्रा और अंत में गुरु लघुवाला छंद और [३] कुरु प्रदेश में प्रचलित " सावण गीत " बताया गया है। अखा के " झूलना " का परीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि ये न तो बच्चों को झूला-झूलाने के गीत है और न तो शास्त्रीय कसौटी पर खरे उतरनेवाले " छंद विशेष " है। अधिक से अधिक इन्हें संतों द्वारा व्यवहृत लोक गीत का प्रकार विशेष कह सकते हैं। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित छंद दृष्टव्य है

मनके शिर मदार सारा
  तन तांई क्या बात तुसे
मन मारा तब मूल पाया
  दाना कबीर एतना बुझे
सांप मारने सु गरज हे रे
  दर तोड्या ना नाग मरे
सीधी बात समझ अखा
  आज अवळा क्या जाता फिरे ।।५२।।

अखा द्वारा प्रयुक्त सधुक्कड़ी छंद

साखी शब्दों नित्य कहे कुबुद्धि सुबुद्धि दोय
सुबुद्धि अर्थ उपर रहे कुबुद्धि वाद हि खोय ।।
— कुमति अंग

उपर्युक्त उदाहरण में " साखी " और " शब्द " का जिस रूप में उल्लेख किया गया है उससे तथा प्रस्तुत अंग की अन्य साखियों का अध्ययन करने पर प्रतीत

होता है कि स्वयं अखा इन दोनों का प्रयोग करते होंगे ।

साखी

अखा की साखियों का छंद की दृष्टि से अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि डॉ० त्रिगुणायत ने संतों द्वारा व्यवहृत साखियों से संबंधित छंद-शास्त्रीय दृष्टि से जिस मत की स्थापना की है वह अखा द्वारा प्रयुक्त साखियों पर भी ठीक बैठती है । उनका मत है कि "....... वास्तव में न तो शुद्ध रूप में दोहा का पर्यायवम्बी है और न तो दोहरा का ही दूसरा नाम है ।..... पैंगल नियमों से उसका कोई विशेष संबंध प्रतीत नहीं होता[१]।" अखा की साखियाँ भी दोहा छंद से भिन्न एवं पिंगल के नियमों से सर्वथा निर्बन्ध है ।

शब्द

"शब्द" वास्तव में पद का वाचक प्रतीत होता है । ये शब्द शास्त्रीय राग- रागनियाँ एवं लोकप्रचलित पद-रूप में रचित है । विभिन्न रागों में रचित पदों में "ध्रुव", अंतरा और आभोग का निर्वाह हुआ मिलता है[२]।

रमेणी

अखा कृत रमेणियाँ दोहा-चौपाई में न हो कर "साखी" में है -

---

१. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्टभूमि
- पृ०६७५ से ६७६

२. दृष्टव्य: परिशिष्ट ३ में प्रस्तुत "स्वरलिपि" वाला पद ।

जगत कहो जगदीश कहो । माया कहो कोई काल ।
पूरण ब्रह्म गाइये हो, द्वैत नहीं कोई काल ।।१।।
सत त्रेता द्वापर कलि चारुं न्यारे चाल ।
सदा मते विज्ञान के राम-रमत एक साल ।।२।।

-- अ०रस, पृ० १ वाणी विभाग

अब तक के सभी

उपर्युक्त उदाहरणों में मात्रा की गिनती में जिन वर्णों को नहीं गिनना है उनको भी कविता में रखकर कविने कहीं कहीं अर्थप्रवाहानुकूल लय-परिवर्तन साधा है। " ज्यम- त्यम, ज्यों - त्यों, ज्यांहा-त्यांहा, पण, अने, न, ना, मइइ, साधो " आदि कई अतिरिक्त वर्णों का मुक्तता से प्रयोग किया गया है। छंद निर्वाह का निर्देश करते समय ऐसे शब्दों को या तो कौंस में रखा गया है या आवश्यकतानुसार गुरु लघु तथा लघु गुरु में परिवर्तित कर लिया गया है।

निष्कर्ष रूप में अखा के छंदों में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती है।

१. भावानुकूलता
२. नाद सौंदर्य
३. संगीतात्मकता
४. लघु शब्दों के कारण छंदोलय में सौकर्य
५. भाषा की प्रवाहिता
६. मन की मौज के अनुसार कहीं-कहीं वर्णों की तोड़ मरोड़ और घट-बढ़

---o---